( 5 )

## प्रवासिनी भगिनी को पत्र

हिम शुभ्र धरा पर जाकर,
निज देश न तुम विसराना।
मन से न रहे कुछ दूरी,
हो भौतिक आना जाना।।

अतिशीत न हर ले ऊष्मा,
भावुकता भरे हृदय की।
जीवन रण की कठिनाई,
पोषक ही बने अभय की।।

थोड़े ही लोग वहां पर,
है यहां असंख्य जनता।
पर प्रकृति सदय है हम पर,
हो भले यहां निर्धनता।।

परवशता दीर्घ अवधि की,
कर गई हमें अति वंचित।
शोषण कर्ताओं के घर,
हो गया वित्त बहु संचित।।

तृष्णा ही विवश मनुज से,
है नर्तन नित्य कराती।
असफलता नहीं सफलता,
भी नर को यहां हराती।।

उर्वर है मानव का मन,
अगणित इच्छाएं जग में।
गंतव्य न पाता कोई,
चहाता रह जाता मग में।।
बस पंचत्तव निर्मित हैं,
जग के पदार्थ से सारे।
जिनको समेटने के हित,
फिरते नर मारे-मारे।।

वे दें विश्राम भले ही,
इस पंचतत्व काया को।
विस्तारित कर जाते हैं,
पर वे दुरूह माया को।।

पाया पदार्थ भ्रम करके,
मिलते ही हुआ पुराना।
मन त्वरित नई दौडों का,
लेता है खोज बहाना।।

मिल मिल कर भी क्या मिलता,
जारी रहती मृग तृष्णा।
होती परंतु क्या जग से,
सहकर भी दुख वितृष्णा।।

सुख शांति न देती उर को,
दुष्प्राप्या बहु धनवत्ता।
कितनों को सुख दे पाई,
अर्जित श्रम से प्रभुसत्ता।।

संसार त्वरित गति से यह,
परिवर्तित होता जाता।
अपना यह रूप निमिष में,
बेचारा खोता जाता।।

यद्यपि करता ग्रहणेच्छा,
शाश्वत इस जड़ गत्वर की।
संगति कैसे हो सकती,
भास्वर की भव नष्वर की।।

है मूल यही दुखों का,
तुम अचल और जग चल है।
तुम चेतन और अमल हो,
यह जड़ है विकृति विकल है।।

पुरुषार्थ अमित करने से,
मैं नहीं रोकता जन को।
पर सदा मानना साधन,
पर साध्य मानना धन को।।

दिव्यता दिव्यता को ही,
बस तृप्त यहां कर सकती।
सारी सम्पदा धरा की,
मन शून्य कहां भर सकती।।

आओ प्रशान्त हो बैठें,
रोकें मन की हलचल को।
भावी का स्वप्न न देखें,
भूलें दुख सुखमय कल को।।

सस्केचवान सरिता के,
तट पर तुम मोद मनाना।
पर यमुना को सुरसरि को,
हे भगिनी भूल न जाना।।
मेपल वन की हरियाली,
ऊंचाई पाइन फर की।
देखो पर याद रहे वह,
अमराई सुरभित घर की।।

आलसी शिरोमणि मैं हूँ,
आपको नहीं लिख पाया।
बहुधा स्मरण किया है,
जो अब तक काल बिताया।।

प्रार्थना यही है प्रभु से,
आनंदित रहे सदा ही।
अग्रजा याद मेरी भी,
कर लेवें यदा कदा ही।।